International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.10 No.1 September – October 2022

21 वी सदी के हिंदी उपन्यास में राष्ट्रीय भावना

प्रा. डॉ. जितेंद्र बनसोडे

सहा. प्राध्यापक, हिंदी विभाग, मुधोजी महाविद्यालय, फलटण

Corresponding Author - प्रा. डॉ. जितेंद्र बनसोडे

Email - jitendrabansode4@gmail.com

DOI - 10.5281/zenodo.7314946

शोध सारांश :

देशवासीयों के अंदर राष्ट्रीय भावना को बनाये रखना आज एक चुनौतीभरा कार्य बन गया है क्योंकी आज के राजनैतिक समाज की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि यहाँ पर नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रह गया है, ईमानदारी भी अपना चेहरा बदल चुकी है | मूल्यों का पठन अब इस तरह होने लगता है तो समाज, राज्य या राष्ट्र को अराजकता, संत्रास और क्रूरता से बचाना मुश्किल हो जाता है। आवश्यकता है ऐसे रचनात्मक की जो इन परिस्थितियों से मनुष्य को निकाल सके और जो निर्दोष है, ईमादार हैं, सच्चे है, संघर्षशील हैं, प्रतिबद्ध है उन्हें अपने रास्ते पर चलने की स्वतंत्र और समर्थन मिल सके। हमारे राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीय भावना को बनायें रखने के लिए इन सारी बातों पर सोच विचार करने का समय अब आ गया है |

कुंजी शब्द : *प्रतिबद्ध, समर्थन, शाश्वत, निर्वहन, तेजोपम, अभीष्ट, कालजयी, सरोकारिता, आत्मतुष्ट, दरकिनार, कठपुतलि, न्यायविद्, हितैषी, प्रौद्योगिकी, गुमराह, महामारी, अभिव्यक्त |*

भूमंडलीकरण के युग की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि हम अंधे होकर भौतिक सुखों के पीछे भाग रहें है। अपनी हजारों सालों वाली पुरानी सांस्कृतिक विरासत को विस्मृत कर शाश्वत जीवन मूल्यों को भुलाकर 'बाजार' की गिरफ्त में इस कदर जकड़ गए हैं कि ग्राहक और विक्रेता के दो शब्दों में हमारी सारी संवेदनाएँ सिमटकर रह गई है। संयुक्त परिवार टूटकर बिखर गए और एकल परिवार के अति व्यस्त जीवनक्रम के कारण माता-पिता के पास बच्चों के लिए समय नहीं है। ऐसे माहौल में राष्ट्रीय भावना के बारे में सोचना एक सोच ही होगी | इस भागा-दौडी के दौर में बच्चों का मार्गदर्शन करने के लिए साहित्य ही एकमात्र सहारा हैं | और इस बात का इतिहास साक्षी हैं की जब-जब समाज दिशाहीन बना हैं उसे सही दिशा दिखाने की जिम्मेदारी साहित्य ने बखुबी निभाई है | साहित्य तथा साहित्यकार अपनी इस महत्त्वपूर्ण भूमिका के निर्वहन में कभी पीछे नहीं रहे । हमारे समाज के युवक तथा युवतीयों को राष्ट्रीय भावना के प्रति सजग करने का महत कार्य कतिपय साहित्याकारों ने किया हैं शक्ति, शील और सौंदर्य, मनुष्य के

व्यक्तित्व को तेजोपम बनानेवाले गुण है। राष्ट्र की भावी पीढ़ी को इन गुणों से ओत-प्रोत करना साहित्यकार अपना अभीष्ट कर्तव्य मानता है। पुष्प में सुवास की भाँति वह इन गुणों को युवा-युवतियों में भरना चाहता है। विद्या के साथ विनय के संयुक्त होने की बात कहकर साहित्यकार सद्विचार की एक अनमोल सौगात समाज को सौपी देता है"[1]

साहित्य सृजन के पीछे दो संघर्ष होते हैं | रचनाकार का संघर्ष होता है एक आत्मसंघर्ष और दूसरा सामाजिक संघर्ष | अर्थात हर रचनाकार का सृजन में निहित आत्मसंघर्ष ही रचना के साथ आबद्ध होता है ऐसा भी नहीं है | किन्तु मुक्तिबोध जैसे रचनाकार दोहरा संघर्ष करते है और इसलिए उनकी रचनाएँ कालजयी बन जाती है | रचनाकार का आत्मसमर्पण होता है और रचना के शिल्प को प्रौढ़ता एव सौंदर्य प्रदान करता है | कोई भी रचना तभी प्रासंगिक हो सकती है जब रचनाकार के उसके विचार प्रासंगिक हो और वह सामाजिक विसंगतियों को और उससे उपजे संघर्ष के बीच अपनी रचना का विस्तार करते हुए समाज की कुरूपता एवं विद्रूपताओं पर उंगली रखता है | वर्त्तमान विद्रुप परिवेश में जहाँ अच्छी बात पर किसी का भी ध्यान नहीं जाता | सब जगहों पर विद्रुप एवं विद्रुपता के प्रदर्शन की होड़ - सी लगी है | [2]

इक्कीसवीं शताब्दी के साहित्य सर्जन संबंधी डॉ ओमप्रकाश कश्यप कहतें हैं इक्कीसवीं शताब्दी का स्वागत लोगों ने पूरे हर्षोल्लास के साथ किया था। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पिछली शताब्दी ने जो लक्ष्य सिद्ध किए थे, उनसे उत्साहित लोग यह मान चुके थे कि आनेवाली शताब्दी वैज्ञानिक क्रांति की होगी। वर्तमान शती के पहले दशक में देखें तो लगता है कि इसने हमें निराश भी नहीं किया है। मात्र दस वर्ष की अवधि में हम विकास की इतनी लंबी यात्रा कर आए हैं, जितनी पहले पूरी शताब्दी में असंभव थी। कंप्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक्स, संचार, अंतरिक्ष, आवास, स्वास्थ्य, चिकित्सा, यातायात जैसे अनेक क्षेत्र हैं, जिनमें विकास की गति इतनी तेज है, मनुष्यता के इतिहास में उतनी शायद ही कभी रही हो। हम यह भी नहीं भूले हैं कि साहित्य के लिए इक्कीसवीं सदी की दस्तक आशंकाओं भरी थी। दूरदर्शन और कंप्यूटर को शब्द पर संकट के रूप में लिया जा रहा था। माना जा रहा था कि तेज गति जीवन और आपाधापी में लोगों के पास शब्द से संवाद करने का समय ही नहीं बचेगा। लगातार बढ़ते चैन पाठकों को पुस्तकों से दूर कर देंगे। पर जो हो रहा है, वह उस समय की हमारी कल्पना से एकदम परे है।

आज इंटरनेट के कारण टेलीविजन का खतरा बढ़ चुका है, जबकि शब्द-साधकों और पाठकों के लिए जो महँगी होने के कारण पुस्तकों से कटने लगे थे, इंटरनेट पर मौजूद साहित्य कागज पर छपे साहित्य का सार्थक विकल्प बनता जा रहा है। वहाँ मौजूद नेट पुस्तकों का खजाना पुस्तक-प्रेमियों के लिए अनूठा वरदान है। दुर्लभ मानी जानेवाली पुस्तकें मात्र एक क्लिक पर मुफ्त उपलब्ध हैं। साहित्य और बौद्धिक संपदा के लिए नए बाजार तलाशने की कोशिश भी जोर शोर से जारी है। संचार क्रांति ने साहित्य और पाठक की दूरी को समेट दिया है। अब उत्तर में रह रहे दक्षिण भारतीय पाठक को यह चिंता

करने की आवश्यकता नहीं है कि उसकी भाषा की पुस्तक और पत्रिकाएँ उसके आसपास उपलब्ध नहीं। प्रायः सभी अच्छी पत्रिकाओं के इंटरनेट संस्करण मौजूद हैं, जिन्हें सामान्यतः निःशुल्क उतारा जा सकता है। साहित्य विद्युतीय त्वरा से हम तक पहुँच रहा है। भाषाएँ क्षेत्रीय सीमाएँ लाँघकर विश्वमंच पर संवाद कर रही हैं। शब्द के नए-नए रूपाकार सामने आ रहे हैं। इंटरनेट की लोकप्रियता का आलम यह है कि चाहे वह लेखिका हो, पाठक हो -अथवा प्रकाशक, सभी वहाँ अपना नाम-पता खोजने को लालायित रहते हैं। [3]

राष्ट्रीय भावना और राजनीतिक भावना प्रय: एक दूसरे के पूरक होती हैं | राजनीतिक भावना बहती हुई सरिता है तो राष्ट्रीय भावना अथ:ह समंदर है | साहित्याकारों की सामाजिक सरोकारिता संबंधी डॉ ईश्वर पवार कहतें है कि, अगर लेखक नहीं तो दूसरे कौन अपने यहाँ की असफल सरकारों को अपराधी ठहराएँगे और लेखकों के अलावा कौन अपने समाज को उसके भीसताजन्य अपमान अथवा आत्मतुष्ट नपुंसकता के लिए दोषी ठहराएगा।यह कथन किसी भी देश की किसी भी ऐसी सरकार पर लागू होता है जहाँ सरकार में शामिल राजनेता अपने आचरण, अपनी दृष्टि, अपने आदर्शों नैतिक मूल्यों तथा दायित्वों को दरकिनार करते हुए सिर्फ अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपने क्रिया-कलापों से न सिर्फ जनता को धोखा देते हैं अपितु वे लोकतंत्र की परंपराओं को भी पददलित करते हुए समूची राजनैतिक व्यवस्था को भ्रष्ट, चरित्रहीन, छल-छद्म वाली व्यवस्था बना देते हैं ये सरकारें जो झूठे, अपराधी प्रवृत्ति वाले भ्रष्ट नेताओं से भरी पड़ी हैं जिनका मकसद सिर्फ अपनी महत्वकांक्षाओं को पूर्ण करके अवसरवादी बनकर अपना भविष्य सुरक्षित करना होता है। इतना ही नहीं ये नेता अपने विभागों के अधीन काम करने वाले अफसरों को अपना दास बनाकर कठपुतलियों की तरह नचाकर उनसे अपने काम करवाते हैं, भेंट वसूल करते हैं और परोक्ष में उन्हें भी भेंट लेने के लिए उकसाते हैं, छूट देते हैं। ऐसे में जनता किसके पास जाए और किस विश्वास के आधार पर जाए।"[4]

शमोएल अहमद का उपन्यास 'महामारी' आज के विश्रृंखल समाज की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है | आजकल दिन-ब-दिन खस्ता हो रही राजनीति भविष्य में हमारे राष्ट्रीय भावना का दमन करने वाली विनाशकारी शक्ति ना हो | महामारी में जिन राज्यों की सरकारों को विषम बनाया गया है या शेष राज्य की सरकारों में ये राजनैतिक तत्व नहीं है। आज भ्रष्टाचार, दलाली, सुरा-सुंदरी के अपने स्वार्थों और महत्वकांक्षाओं को पूरा करने के लिए पार्टी बदल लेना आम बात हो गई है। इनका इस्तेमाल करके मनचाहा पद तथा स्थान पाया जा सकता है। ईमानदार तथा सच बोलने वालों को आंतकवादी कहकर मार दिया जाता है।

'महामारी'उपन्यास को पढ़कर लगता है कि उपन्यास में वर्तमान राजनीति का यथार्थ उठाया गया है, और घटनाएँ भी वही जो बहुत जानी-पहचानी सी हैं पर ऐसा यथार्थ जो हमारे जीवन में, हमारी तमाम व्यवस्थाओं में, सोच में, विचारों में, आचरण तथा दैनिक जीवन में गहरा बैठा हुआ है इससे अपने को मुक्त नहीं किया जा सकता है बल्कि जो मुक्त होने की कोशिश करता

है या शामिल नहीं होना चाहता है उसे जलील किया जाता है और इस कदर विवश किया जाता है कि वह सत्ता के रंग में रंग जाए। उपन्यास के मुख्य पात्र थिरवानी की उपस्थिति पूरी यात्रा के दौरान जो माहौल रहता है और जिन परिस्थितियों में वे काम करते हैं। उससे इस पूरी व्यवस्था को बारीकी से समझा जा सकता है। मिसेज चुगानी जैसे महिला पात्र यद्यपि निराश करते हैं जो अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए बहुत आसानी के साथ इस्तेमाल हो जाती है, शर्मनाक स्थितियाँ तब पैदा हो जाती हैं जब नेताओं के साथ न्यायविद् भी उनके बगल में खड़े नजर आते हैं। बाहर से सभ्य आदर्शवादी, जनता के हितैषी दिखने वाले ये नेता सता के साथ उसी तरह खेलते हैं, उसका इस्तेमाल करते हैं जैसे मिसेज चुगानी के साथ करते हैं।

आम जनता को गुमराह करते हुए सरकारें विकास के नाम पर अपनी जेबें भरती हैं और जनता के लिए विकास कार्य करने का ज्यादातर समय उठा-पटक में लगा रहता है। आज की राजनीति रैलियों, चुनावी हथकंडों, वायदों-शायदों को तोड़ने, जनता को बेवकूफ बनाने, अपने-अपने पद सुरक्षित करने, हर कदम पर पैसा बटोरने, जोड़-तोड़ करने, भाषा, जाति, धर्म, वर्ग-वर्ण और विचारधारा के नाम पर भाषणबाजी करने का माध्यम बन गई है। इन तमाम घटनाओं और परिस्थितियों का जीवंत दस्तावेज है यह उपन्यास। अब भला ऐसे माहोल में उच्च राष्ट्रीय भावना की आशा करना कहा तक उचित है इसका निर्णय सुधी पाठक ही करें|

प्रस्तुत उपन्यास थिरवानी जैसे पात्र के माध्यम से पूरे राजनैतिक परिवेश तथा व्यवस्था को सामने लाता है जहाँ दफ्तरों से लेकर राजनैतिक गलियारों तक भ्रष्टाचार फैला है, लेकिन एक ऐसे पात्र की कभी बराबरी महसूस होती है जो इन सबके विरोध में खड़ा होता, संघर्ष करता, और बहुत विपरीत निराशाजनक परिस्थितियों में ही सही आशा की एक लौ जलाता ताकि लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले इस देश में लोगों की आस्था थोड़ी बहुत राजनीति के प्रति बनी रहती। नचू का अंत भी गहरी हताशा से भर देता है हालाँकि यही आज का सच है पर सच में से एकाध आदर्श की खोज राजनैतिक मूल्य को जीवित रखता। उपन्यास सामयिक घटनाओं के साथ दलित वर्ग, जातिवाद, ब्राह्मणवाद, झारंखड बनने की संघर्श यात्रा, निरंतर हो रहे घोटालों और कॉडों को कई संदर्भों में कई स्थानों पर अभिव्यक्त करता है। इतिहास गवाह है जिस समय राजनीति अपनी नैतिकता खो देती है वहां राष्ट्रीय भावना भी उदासिन होने लगती है|

'महामारी' उपन्यास के माध्यम से अंत में लेखक उन ताकतों के खिलाफ खड़े थिरवानी के मिशन को सामने रखता है जो ढानचू इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल 'रिफॉर्म' की तीन शाखाओं के माध्यम से शैक्षिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक- "दबे-कुचले तबके के सामाजिक और राजनैतिक अधिकार की सुरक्षा थिरवानी फासीवाद के विरुद्ध लड़ाई खुद अपने घर से शुरू करते हैं। आधी रात के सन्नाटे में किसी के होने की आवाज उभरती है। कुछ हद तक लेखक थिरवानी के मानस पटल में राष्ट्रीय भावना का अंकन करते हुए दिखाई देता है|

निष्कर्ष :

राष्ट्रीय भावना को मारक ठहर रही आज की रंग बदलू गिरगीटी राजनीति सत्ता पाने की इस गलाकाट होड़ में झूठ, बेईमानी, पाखंड और भ्रष्टाचार का जो खेल वर्तमान में खेला जा रहा है उसका यथार्थपरक चित्रण करना उपन्यासकार का साहस ही माना जाएगा जो बिना किसी लाग लपेट के राजनीति के इन चेहरों को बेनकाब करता है आज रचनाकार यदि इन घटनाओं, स्थितियों और सच्चाइयों पर कलम नहीं उठाता है तो उसका सामाजिक और मानसरोकारों के प्रति आस्था का भाव कोई मायने नहीं रखता। इसलिए अपने समय के सत्य को उजागर करना लेखक का दायित्व बन गया है। इस बात पर हर साहित्यकार को कायम रखना चाहिए भले ही वह किसी भी काल काया विधा का साहित्यकार हो ...

संदर्भ सूची :

1) साहित्य अमृत-संपा. त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी, (उषा यादव), नवंबर-2016, अंक-4, पृ. 26
2) 21 वीं शताब्दी के चर्चित उपन्यास एक दृष्टीक्षेप-डॉ ईश्वर पवार, ज्ञान प्र. कानपुर,प.सं.2014 भूमिका
3) साहित्य अमृत-संपा. त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी, (ओमप्रकाश कश्यप), नवंबर-2016, अंक-4, पृ. 42
4) 21 वीं शताब्दी के चर्चित उपन्यास एक दृष्टीक्षेप-डॉ ईश्वर पवार, ज्ञान प्र. कानपुर,प.सं.2014 पृ. 24